

भक्ति के अनेक रूप

दुनियाँ में अनेक धर्म और मज़हब हैं और उनमें पूजा आदि के जो अलग - अलग तरीके हैं उन सबका मतलब यही है कि किसी तरह ईश्वर के चरणों में प्रेम हो जाय. बिना प्रेम के ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती. ईश्वरीय प्रेम का बयान ज़बान से नहीं किया जा सकता, ख्यालों में आदमी कितना ही ऊँचा उठ जाय पर उस मोहब्बत का जो ईश्वर के लिए होती है, वार पार नहीं पा सकता -- उसका कोई अन्त नहीं है --उसकी पूर्णता कहाँ है, इसका पता नहीं. लेकिन हिन्दू धर्म में ईश्वर -प्रेमीयों ने उसे बयान करने की कोशिश की है और उसके लिये संसारी प्रेम की उपमा का सहारा लिया है. जो चीज़ें ईश्वरीय हैं उनको मनुष्य ने अपने तौर पर समझने की कोशिश की है. इस ईश्वर प्रेम को उन्होंने ' भक्ति ' नाम दिया है.

सबसे नीचे दर्जे की भक्ति को ' शाँत ' भाव कहा गया है. भक्त ईश्वर की उपासना तो करता है लेकिन प्रेम की आग उसके हृदय में नहीं धधकती, ईश्वर के लिये पागलपन और उन्मत्ता उसके मन में नहीं आती. इस तरह का प्रेम घटिया है, ठंडा है, धीमा है, उसमें गरमी और जोश नहीं है. वह शाँत है. रस्मी तौर पर खाली पूजा कर लेना, फूल चढ़ा देना, दर्शन कर आना, पाठ कर लेना या ऐसी ही और ऊपरी बातों से ज़रूर यह शाँत भाव ऊँचा है, लेकिन तेज़ी न होने से इस निचले दर्जे के प्रेम को शाँत भाव कहा गया है. शाँत भक्त सीधा और चुपचाप रहने वाला होता है.

इससे कुछ ऊँचा और अगला दर्जा प्रेम का 'दास्य ' भाव कहलाता है. यह भाव जब आता है तब भक्त अपने को सेवक और ईश्वर को अपना मालिक समझता है. उसके कर्म ईश्वर के प्रति ऐसे ही होते हैं जैसे एक वफ़ादार नौकर अपने मालिक के लिये करता है. उसकी सारी ज़िन्दगी अपने मालिक के लिये होती है. मगर यह भी घटिया भक्ति है, जैसा काम वैसा दाम. नौकर की पहुँच मालिक के घर के अन्दर तक है लेकिन वह उससे मिलकर एक नहीं हो सकता. दो का ख्याल हमेशा रहेगा. " तू मालिक है, मैं तेरा दास हूँ ." आधीनता तो पूर्ण होती है - जैसा देगा वैसा खाऊँगा, जैसा देगा वैसा पहनूँगा, जिस नाम से पुकारेगा वही मेरा नाम है - ऐसा भाव दास का मालिक की तरफ़ होता है. इससे मालिक खुश होता है और कभी - कभी खुश होकर अपने नज़दीक बिठा लेता है. इससे ज़्यादा और कुछ नहीं. नज़दीकी हाँसिल हो गई मगर मिलकर एक नहीं हुए. नौकर का मालिक के ऊपर कोई ज़ोर नहीं होता. हनुमान जी का दास भाव था.

तीसरा दर्जा प्रेम का ' सख्य ' भाव कहलाता है. सखा मायने दोस्त. "Thou art my beloved friend" सख्य भाव में भक्त भगवान को अपने बराबर का, हमदर्द, हमराज़ और हमनशीं समझता है. ग़रीबी, अमीरी का कोई ख्याल नहीं, जैसे कृष्ण और सुदामा का भाव. भक्त अपने ईश्वर को जब सख्य भाव से पूजता है तब उसे अपने नज़दीक समझता है. अपने जीवन की अच्छी-बुरी, दुःख - सुःख की, पोशीदा से पोशीदा सब भेद खुल कर कह देता है और उससे पूरी उम्मीद ही नहीं बल्कि ज़ोर के साथ उसका भरोसा करता है कि वह उसकी हिफाज़त करेगा, उसकी हमेशा मदद करेगा. वह ईश्वर को ऐसा समझता है जैसे बचपन के खेलने वाले साथी - ग्वाले और कृष्ण.

जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे गिरता है, जो नीचे गिरता है, वह ऊपर भी चढ़ता है -- यह उसूल है. जब इन्सानी आत्माऊपर चढ़ सकती है तो वह नीचे भी गिर सकती है. इसलिए आदमी को चाहिये कि अपनी ख्वाहिशात को धर्म का सहारा लेकर पूरी करे लेकिन उसमें पूँजी, जो उसके पास निश्चित मात्रा में हैं, कम से कम लगाए और जो पूँजी छिपी हुई है, यानी जो शक्ति आत्मा की छिपी हुई है, उसको अभ्यास करके हासिल करे और इस पूँजी की मदद से, यानी अभ्यास और सतसंग करके, ऊपर की चढ़ाई करे ताकि उससे नज़दीकी हासिल हो सके. जब तक ईश्वरीय गुण हासिल नहीं होते, उसको कुरबत (समीप्य) नसीब नहीं होगा और जब तक कुरबत नसीब नहीं होती, आत्मा को चैन नहीं मिल सकता. इसलिए दुनिया के सब काम करते हुए, किसी न किसी तरीके से (जिसको मन पसन्द करता हो) उस ईश्वर को याद बराबर करते रहना चाहिये. यही सिर्फ एक ज़रिया है जिससे जीव हमेशा - हमेशा का सच्चा और अपार सुःख हासिल कर सकता हैं जो हमारा असली परमार्थ है. यहीं उस परम पिता परमात्मा के दुनियाँ की रचना करने का मतलब है.

ईश्वर सबको ज्ञान दें.

राम संदेश : सितम्बर , १९६२.